THE TIMES OF INDIA

*Date:08-02-23*

# Make In India

***As Google comes up with a ChatGPT rival & AI becomes ubiquitous, here's what GoI must do***

**TOI Editorials**

The world of chatbots is hotting up. Google on Monday said that a new artificial intelligence (AI) service named Bard is being tested ahead of a public launch. It's a conversational service which can provide textual answers to questions raised by users. Bard's public launch will make it the second generative AI, after ChatGPT, to be freely accessible. Generative AI represents another dimension where the technology has moved beyond pattern recognition to synthesising answers from large data sets.

AI doesn't have a precise definition. It's best described as a constellation of technologies. The idea arises from English mathematician Alan Turing's work in 1950 where he suggested a machine could be programmed to learn from experience in the way children do. The idea has now fructified, and AI is transforming every conceivable area of activity. Acknowledging its importance, the budget announced that three centres of excellence in AI will be set up in top educational institutions, with the private sector contributing to the effort. GoI has taken the right step as AI, the world's most disruptive technology, is growing everywhere on the back of a collaborative effort between the state and private sector.

GoI's foremost contribution to making India a key centre in the global AI network will have to be in research. Not all of it can generate commercial returns immediately. However, the long-term payoffs are invaluable. A lot of US government support to domestic AI development is routed through its defence industry. China, the other AI powerhouse, has thrown the weight of the state's resources behind its attempt to dominate. Large-scale funding and creation of research ecosystems that draw in global Indian talent in AI need to be GoI's priorities.

AI is already in extensive use at the commercial level. Indian firms have access to domestic talent to leverage these opportunities. It now needs to be complemented by access to data. AI rests on three pillars: data, algorithms and computing power. Indian firms need a sound regulatory framework that allows access to a lot more anonymised data. A GoI expert committee suggested open access to non-personal data. India's lagging in establishing a legal framework to both safeguard privacy and provide

open access to anonymised data for Indian startups. This needs to be addressed soon. AI is the technological frontier that offers India a chance to leapfrog a few stages.

---

THE ECONOMIC TIMES

*Date:08-02-23*

# Multilingual Means Better Learning Tools

**ET Editorials**

AMacmillan Education India survey reports that 86% of teachers in northern India want their classrooms to be multilingual. One presumes that to mean engaging in regional languages and English, and Hindi if the former isn't Hindi. Promoting multilingualism should not turn classrooms into towers of Babel but give teachers the flexibility to improve learning outcomes. It is essential that children learn not just words but comprehend their meanings. There is no point children drawing a house with thatched roofs and a chimney where 'home' is signified by flatroofed houses. For this purpose, learning outcomes are most effective when the language at school is the language at home, supplemented with the link languages of English and Hindi.

Diversity of languages provides a readymade opportunity for a polyglot nation. Experts find speaking multiple languages improves cognitive skills. Encouraging students to learn a modern Indian language (including English) other than their own is a good idea from a cognitive perspective. Getting lost in translation is an invitation to fall into rote. First-generation learners and those without adequate home support face another problem. Difficulty in comprehending makes sitting in class challenging and tiresome, resulting in disinterest, avoiding class and even dropping out, reinforcing the cycle of disadvantage. Allowing the use of the local language/dialect in the classroom can break this cycle.

This needs capable teachers to engage and corresponding language tools like quality textbooks and audiovisual content. Teachers must be supported to experiment and to develop the required learning materials. But, before that, educators need to get on the same page on what comprises a multilingual classroom.

---

दैनिक भास्कर

*Date:08-02-23*

# कानूनी चाबुक से खत्म नहीं होंगे सामाजिक दोष

**संपादकीय**

दुनिया भर की न्याय-प्रक्रियाओं ने सिद्ध किया है कि सामाजिक बुराइयों को केवल कानूनी चाबुक से खत्म नहीं कर सकते, क्योंकि इनके पैदा होने के मूल कारण भी अलग-अलग होते हैं। हमने देखा कि एक राज्य ने शराबबंदी लागू की जबकि उस दिशा में सामाजिक चेतना को जगाने के लिए समुचित उपक्रम नहीं हुआ। नतीजतन, जहरीली शराब पीकर मौतें होती हैं। इसी राज्य में लड़कियों की शिक्षा पर सरकार ने एक अरसे से काफी ध्यान दिया, जिससे दस साल बाद प्रजनन दर में गिरावट आनी शुरू हो गई है यानी शिक्षित लड़कियां गर्भ निरोध के आधुनिक तरीके अपनाने लगीं। पूरे देश में आज प्रजनन दर घटकर 2.1% पर आ गई है क्योंकि लड़कियां शिक्षित हो रही हैं और नौकरी के साथ फैसले भी ले रही हैं। पूर्वोत्तर के एक राज्य में एक दिन में 2700 लोगों को बाल- विवाह के आरोप में गिरफ्तार करना समस्या का सही समाधान नहीं है। राज्य के मुख्यमंत्री ने दंडात्मक कार्रवाई का औचित्य बताते हुए 16% बच्चे 15-19 साल की लड़कियों की कोख से पैदा हो रहे हैं। जाहिर है ये बच्चे भविष्य में कमजोर होंगे, मातृमृत्यु दर (इस राज्य में सर्वाधिक है) और बाल मृत्यु दर बढ़ेगी। लेकिन इसके खिलाफ लोगों की चेतना जगानी होगी न कि जेल भेजने से बाल-विवाह रुकेगा। सन् 2000- 2010 के बीच नारी-शिक्षा का अभियान चला और देशव्यापी जागरूकता से बाल विवाह 47 से 30% रह गया। कानून का दंड कुछ हद तक हतोत्साहित कर सकता है लेकिन हजारों साल की सामूहिक सोच खत्म करने के लिए उनकी समझ को बदलना होगा। साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधा के अलावा नारी सशक्तीकरण अभियान शुरू करना होगा।

---

***Date:08-02-23***

# इस बार के आम बजट की पांच जरुरी बातें

**चेतन भगत, ( अंग्रेजी के उपन्यासकार )**

इस जैसे किसी कॉलम में सरकार की तारीफ करने का मतलब है, अपने पर 'भक्त' या 'चापलूस' होने का ठप्पा लगवाने का खतरा मोल लेना। ये सच है कि हमें सरकार या उसकी नीतियों में जो कमियां हैं, उनकी आलोचना करनी चाहिए। लेकिन क्या जब सरकार ने कोई प्रशंसा-योग्य कार्य किया हो तब भी उसकी प्रशंसा न की जाए? क्योंकि मौजूदा सरकार के द्वारा अब तक प्रस्तुत किए गए नौ बजटों में से इस वर्ष का आम बजट सबसे अच्छा रहा है। बात राजकोषीय जिम्मेदारी की हो, बुनियादी ढांचे को बढ़ावा देने व खर्चीली सब्सिडियों में कटौती करने की हो या करदाताओं को राहत देने की, बजट ने हर क्षेत्र में अच्छा काम किया है। बजट की पांच बातें ऐसी हैं, जिनके लिए सरकार की सराहना की जाना चाहिए।

पहली बात, 2024 के लोकसभा चुनावों से पहले यह इस सरकार का आखिरी बजट था। इसके बाद अब सरकार पूरी तरह से चुनावी मोड में आ जाएगी। अतीत में चुनाव से पूर्व के अंतिम बजटों के साथ यही समस्या रही है। वोटों की चाह में इनमें दिल खोलकर सौगातें, सबसिडियां, छूट आदि दी जाती थीं। वास्तव में चुनाव-पूर्व बजट का लोकलुभावन होना इतना तयशुदा मान लिया गया था कि विश्लेषकगण इस बार भी वैसी ही अपेक्षा कर रहे थे। एक्सपर्ट लोग इस तरह की बातें कहने के लिए तैयार बैठे थे कि बजट में राजकोषीय जिम्मेदारी का निर्वाह नहीं किया गया है, लेकिन यह समझा जा सकता है, क्योंकि अगले साल चुनाव जो हैं आदि इत्यादि... लेकिन मौजूदा बजट सरकारी खजाने को मजबूती देने वाला है। राजकोषीय घाटे का मतलब होता है सरकार का अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करना, इसलिए यह घाटा जितना कम हो उतना अच्छा। दो साल पहले यह जीडीपी का 6.7 प्रतिशत हो गया था, जिसे इस बार 5.9 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया था। ये आंकड़े भले हर भारतीय के जीवन पर प्रभाव डालते हों, लेकिन उनमें रुचि केवल अर्थशास्त्रियों की होती है। अगर सरकार जरूरत से ज्यादा खर्च करती है तो मुद्रास्फीति की स्थिति निर्मित हो जाती है और इकोनॉमी कमजोर होती है। लेकिन शॉर्ट टर्म में ज्यादा खर्च करने का लोभ संवरण करना कठिन होता है। मुफ्त सौगातें देने वाली पार्टी वोटरों को बड़ी प्रिय होती है। लेकिन इस बार के बजट में सरकार ने ऐसा नहीं किया और वित्त-वर्ष 2025-26 तक राजकोषीय घाटे को 4.5 प्रतिशत तक लाने का भी लक्ष्य रख लिया गया है।

दूसरी बात, ऐसा नहीं है कि यह सरकार हमेशा ही हाथ रोककर खर्चा करती है। सरकार के खर्चों का एक बड़ा हिस्सा वेतन भुगतान और राजस्व-व्यय कहलाने वाले ब्याज भुगतान में नियमित रूप से जाता है। इनसे रोजमर्रा का कामकाज चलता है। लेकिन सरकार दीर्घकालिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए भी पैसा खर्च करती है, जिन्हें पूंजीगत-व्यय कहा जाता है। ये वैसे व्यय हैं, जिनसे भविष्य में रिटर्न मिलता है। बुनियादी ढांचे के निर्माण जैसे सड़कें, रेल, पुल, बंदरगाह, हवाई अड्डे आदि इनका बड़ा हिस्सा हैं। सरकार का पूंजीगत व्यय इस साल 7.21 लाख करोड़ से बढ़कर 10 लाख करोड़ हो जाएगा। यह 37 प्रतिशत की बढ़ोतरी है और तीन वर्ष पूर्व के व्यय की तुलना में लगभग दोगुनी है। अकेले रेलवे मंत्रालय का व्यय 1.6 लाख करोड़ से बढ़कर 2.4 लाख करोड़ हो गया है, जो कि एक साल में 48 प्रतिशत का इजाफा है। ये मामूली बदलाव नहीं हैं, बल्कि देश के लिए बेहतर इंफ्रास्ट्रक्चर के निर्माण पर सर्वाधिक जोर देने की नीति का परिणाम हैं। बुनियादी ढांचे की इन तमाम परियोजनाओं से नौकरियों का सृजन होगा, लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इससे आने वाले समय में उत्पादकता और आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। नागरिकों को बेहतर इंफ्रास्ट्रक्चर से जो सुविधा होगी, वह तो है ही।

तीसरी बात, आखिरी बार ऐसा कब हुआ था कि सरकार ने बड़े पैमाने पर सब्सिडियों में कटौती की हो और वह भी चुनाव से ठीक पहले? सरकार ने इस बार के बजट में ठीक यही किया है। फूड, फर्टिलाइजर, पेट्रोलियम आदि में दी जाने वाली सब्सिडियों को 5.6 लाख करोड़ से घटाकर 4 लाख करोड़ कर दिया गया है, जो कि 28 प्रतिशत की गिरावट है। आम बजट के मूल में सरकारी खजाने की स्थिति को बेहतर बनाने की भावना निहित होती है और सरकार ने इस बजट के माध्यम से यही किया है।

चौथी बात, बीते अनेक वर्षों से विनिवेश के लक्ष्यों को अर्जित नहीं किया जा रहा था। बीते वर्ष भी विनिवेश के लक्ष्य का 77 प्रतिशत ही अर्जित किया जा सका। 65 हजार करोड़ के विनिवेश की अपेक्षा थी, पर 50 हजार करोड़ ही हो सका, अलबत्ता वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं। बतलाने की जरूरत नहीं कि कोविड-काल में सरकार ने एअर इंडिया को बेचने में सफलता पा ली थी, अकेला वह कदम ही सराहना का हकदार है।

आखिरी बात, बीते अनेक वर्षों से आयकर के स्तरों को बदला नहीं गया था और मुद्रास्फीति को देखते हुए इसमें सुधार अपेक्षित था। आयकर का एक अधिक उपयुक्त स्तर न केवल मध्यवर्ग को राहत देता है, बल्कि कर-नीति के प्रति स्वीकृति भी बढ़ाता है। मिडिल इनकम वालों को कर में छूट देकर सरकार ने अपने लिए बहुत सारे समर्थक जुटा लिए हैं। साथ ही बजट में और भी बहुत सारी बातें थीं, जैसे विभिन्न योजनाएं, छोटे कल्याणकारी कदम, कुछ नीतिगत बदलाव। साथ ही नियमित ड्यूटियां, कर-निर्धारण, कुछ उत्पादों को महंगा तो कुछ को सस्ता करने के निर्णय थे। एक बड़ी और स्थिर अर्थव्यवस्था का बजट ऐसा ही होना चाहिए।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

*Date:08-02-23*

# कृषि क्षेत्र को समर्थन

**संपादकीय**

केंद्रीय बजट में 2023-24 के लिए कृषि के वास्ते जिस पैकेज का प्रस्ताव किया गया है उसका लक्ष्य प्रमुख तौर पर उन कार्यक्रमों और संस्थानों को आगे बढ़ाने का है जो इस क्षेत्र को वृद्धि प्रदान करने वाले संभावित कारकों की भूमिका निभा सकते हैं। लक्ष्य यह है कि कृषि उत्पादन में इजाफा किया जाए और साथ ही किसानों की आय में बढ़ोतरी की जाए ताकि ग्रामीण इलाकों में बढ़ते असंतोष को कम किया जा सके। परंतु इन गतिविधियों के लिए संसाधनों का आवंटन पर्याप्त है या नहीं यह एक खुला प्रश्न है। ऐसा इसलिए कि इस क्षेत्र के लिए कुल बजट में मामूली इजाफा किया गया है और इसमें पीएम-किसान सम्मान निधि योजना के तहत किसानों को चुकाई गई राशि (तीन किस्तों में सालाना 6,000 रुपये) शामिल है। इसके अलावा जहां तकनीक आधारित वृद्धि पर उचित ही जोर दिया गया है लेकिन कृषि शोध एवं विकास में प्रस्तावित निवेश कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद (एग्रीजीडीपी) के 0.5 फीसदी से भी कम है। इस क्षेत्र में निवेश का वैश्विक मानक एक से दो फीसदी है। बहरहाल, कृषि से जुड़े हुए क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है, खासतौर पर पशुपालन और मछलीपालन आदि को तवज्जो दी गई है जो छोटे और सीमांत किसानों के लिए कृषि आय के पूरक का काम करते हैं।

बजट में प्रस्तुत की गई तीन सबसे उल्लेखनीय पहल हैं एग्रीकल्चर एक्सिलरेटर फंड, कृषि से जुड़ी सूचनाओं और सेवाओं के लिए समावेशी डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण और कृषि उत्पादों के लिए विकेंद्रीकृत वेयरहाउसिंग क्षमता का विकास।

अन्य अहम कदमों में शामिल हैं उच्च मूल्य वाली बागवानी उपज के अच्छी गुणवत्ता के बीजों के उत्पादन को प्रोत्साहन देना, लंबे रेशे वाले कपास की खेती को बढ़ावा और प्राथमिक सहकारी समितियों तथा स्वयं सहायता समूह जैसे जमीनी ग्रामीण संस्थानों में सुधार को गति देना। इसके अलावा उसने संस्थागत कृषि ऋण वितरण के लक्ष्य को 20 लाख करोड़ रुपये कर दिया है। इसमें भी डेरी और मछलीपालन पर ध्यान देने की बात शामिल है। जिस एग्रीकल्चर एक्सिलरेटर फंड

की योजना बनाई गई है उसका लक्ष्य है उन कृषि स्टार्टअप और कृषि उत्पादक संगठनों (एफपीओ) को बढ़ावा देना जो आधुनिक कृषि तकनीक को बढ़ावा देने में लगे हैं और किसानों की समस्याओं का किफायती हल प्रदान करते हैं।

वहीं दूसरी ओर प्रस्तावित डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर यानी अधोसंरचना की परिकल्पना एक ऐसे खुले सार्वजनिक मंच के रूप में की गई है जो फसल की योजना, फसल स्वास्थ्य, कृषि क्षेत्र के कच्चे माल, सहायक सेवाओं, ऋण, बीमा, बाजार की जानकारी तथा अन्य कई चीजों के लिए सेवाएं प्रदान करे। यह पोर्टल फसल उत्पादन के भी विश्वसनीय अनुमान लगाएगा। किसानों के अलावा इस सुविधा तक कृषि क्षेत्र के अन्य अंशधारकों की भी पहुंच होगी। कृषि जिंसों के लिए व्यापक विकेंद्रीकृत भंडारण क्षमता बनाने की योजना भी एक सुविचारित कदम है जो फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम कर सकता है। फिलहाल मोटे अनाजों और दालों में यह छह फीसदी और फलों तथा सब्जियों में 15 फीसदी से अधिक है।

जिंस विशेष के लिए तथा तापमान और आर्द्रता नियंत्रित भंडारगृहों को उत्पादन केंद्रों के करीब तैयार करने से किसानों को अपनी फसल की बेहतर कीमत मिलेगी क्योंकि वे बाजार में उपज को देर से पहुंचाने में भी सक्षम होंगे। वेयरहाउसिंग की रसीदों को पहले ही बैंक ऋण लेने के लिए नकदी के समान मान्य कर दिया गया है। प्राथमिक स्तर के सहकारी ढांचे में सुधार भी जरूरी है और इससे भी कई लाभ हो सकते हैं। फिलहाल बड़ी संख्या में सहकारी समितियां, जिनमें एक से अधिक राज्यों में काम करने वाली समितियां शामिल हैं, उनकी स्थिति ठीक नहीं है। कंप्यूटरीकरण उनके रोजमर्रा के काम को पारदर्शी और प्रभावी बनाएगा। बहरहाल, 2,516 करोड़ रुपये का प्रस्तावित निवेश 63,000 ऐसी सोसाइटियों की जरूरतों के हिसाब से बहुत कम है। अगर सहकार से समृद्धि तक के लक्ष्य को हकीकत में बदलना है तो इस पर दोबारा विचार करना होगा।

---

जनसत्ता

*Date:08-02-23*

# शोषण का खेल

**संपादकीय**

पिछले दिनों महिला खिलाड़ियों के यौन शोषण को लेकर जैसा विरोध प्रदर्शन देखा गया, उससे यही जाहिर हुआ कि खेल के मैदान में महिलाओं के सामने कई तरह की अड़चनें खड़ी हैं। हाल में कुछ महिला खिलाड़ियों या प्रशिक्षकों की ओर से यौन शोषण की शिकायतों से उठा मसला अभी किसी हल तक नहीं पहुंचा है कि अब दिल्ली में एक कबड्डी खिलाड़ी ने अपने प्रशिक्षक पर बलात्कार और भयादोहन का आरोप लगाया है। पुलिस के पास दर्ज मामले के मुताबिक एक महिला खिलाड़ी का कहना है कि उसका प्रशिक्षक न सिर्फ सात साल से बलात्कार कर रहा है, बल्कि उसने धमकी देकर उससे काफी धन भी ऐंठ लिए। गौरतलब है कि पीड़ित महिला एशियाई खेलों में देश के लिए रजत पदक जीतने वाली कबड्डी टीम की खिलाड़ी रही है। आम आपराधिक मानसिकता वाले व्यक्ति की महिलाओं के खिलाफ हरकतें छिपी नहीं हैं,

लेकिन खेलों की दुनिया में इस तरह की घटनाएं ज्यादा शर्मनाक हैं। सवाल है कि प्रशिक्षक जैसी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को ताक पर रख कर कोई व्यक्ति महिलाओं के खिलाफ अपराधियों जैसी हरकतें कैसे करने लगता है!

महिला खिलाड़ियों के यौन शोषण की घटनाएं पहले भी सामने आती रही हैं। कई बार हालात की जटिलता की वजह से कुछ महिलाएं अपने शोषण के खिलाफ बोल भी नहीं पातीं। यह कोई छिपी बात नहीं है कि महिलाओं का घर की दहलीज से बाहर निकल कर पढ़ना-लिखना और उससे आगे खेलों की दुनिया में अपनी जगह बनाना आज भी किस तरह की चुनौतियों से घिरा हुआ है। होना यह चाहिए था कि अगर कोई लड़की किसी खेल में अपनी काबिलियत साबित करना चाहती है तो उसका हौसला बढ़ा कर न सिर्फ बेहतरीन प्रशिक्षकों के जरिए उसकी प्रतिभा को निखारा जाए, बल्कि देश और समाज के हक में भी उसे एक उदाहरण बनाया जाए। लेकिन अफसोसनाक यह है कि एक पारंपरिक ढांचे के समाज में तमाम अड़चनों से निकल कर किसी खेल में अपने और देश के लिए कुछ करने का सपना पालने वाली लड़की का अपराधी कई बार उसका प्रशिक्षक ही निकल जाता है। जिसके भरोसे कोई लड़की किसी खेल में देश को एक नई ऊंचाई देना चाहती है, वही प्रशिक्षक उसके व्यक्तित्व और सपने को छिन्न-भिन्न कर डालता है।

सही है कि खेलों की दुनिया में सभी लोग ऐसी आपराधिक मानसिकता वाले नहीं होते। ऐसे प्रशिक्षकों की लंबी सूची है, जिनके निर्देशन और सहयोग के बूते बहुत सारी महिला खिलाड़ियों ने दुनिया भर में अपनी काबिलियत साबित की है। मगर इसी बीच कुछ प्रशिक्षकों की आपराधिक हरकतों की वजह से किसी महिला खिलाड़ी के टूट जाने की खबरें भी आती हैं। हाल ही में कुश्ती संघ के अध्यक्ष पर महिला खिलाड़ियों के यौन शोषण के आरोपों के अलावा हरियाणा में खुद खेलमंत्री के एक महिला प्रशिक्षक से अवांछित बर्ताव की जैसी खबरें आईं, वे बताती हैं कि खेलों के शासकीय तंत्र में व्यापक सुधार की जरूरत है।

खासकर अगर कोई व्यक्ति महिला खिलाड़ियों के प्रशिक्षण जैसे जिम्मेदारी से भरे काम में लगाया जाता है तो क्षमताओं के साथ-साथ उसकी मानसिकता, प्रवृत्ति और कुंठाओं आदि की जांच-परख भी होनी चाहिए। महिला खिलाड़ियों के किसी भी तरह के शोषण की आशंका तक की स्थिति को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। वरना बहुस्तरीय बाधाओं को पार कर किसी खेल के मैदान में आईं और इसमें ऊंची उड़ान का सपना देखने वाली लड़कियों का रास्ता मुश्किल बना रहेगा।

---

राष्ट्रीय सहारा

***Date:08-02-23***

# जाति-धर्म में न उलझे देश

**डॉ. सी. पी. राय**

जहाँ दुनिया और मानवता के सामने फिलवक्त बड़ी चुनौतिया हैं। दुनिया के सारे देश भविष्य की चुनौतियों का आकलन करने में तथा उससे निपटने में अपनी संपूर्ण मेधा को झोंके हुए है; वहीं भारत में काफी संख्या में राजनीतिक नेतृत्व आज भी जाति और धर्म के विमर्श को ही मुख्य विमर्श बनाने में अपनी पूरी ऊर्जा खपाए हुए है।

नब्बे के दशक से भारत ने धर्म के नाम पर काफी बदनामी और तबाही झेली है और जाति के नाम पर भी उलझन में रहा है। इस वक्त कोविड महामारी के बाद की दुनिया बेरोजगारी, तरह-तरह की बीमारी, मंदी इत्यादि से जूझ रही है, साथ ही आने वाली चुनौतियों को लेकर बेचैन है। इसके अलावा पर्यावरण, ग्रीन गैसों के आतंक, प्रदूषण तथा गैस उत्सर्जन के कारण तरह-तरह के होते बदलाव को लेकर भी चिंतित है। जहां गर्मी पड़ती थी वहां ठंड रफ्तार पकड़ रही है तथा यूरोपीय देशों में 45-46 के बढ़ते तापमान ने लोगों को परेशान कर रखा है। जल संकट आने वाले समय की बड़ी चुनौती बनता दिख रहा है तो भारत में राजनैतिक नेतृत्व मानो सभी तथ्यों से बेखबर कभी हिंदू बनाम मुसलमान तो कभी मंदिर-मस्जिद में उलझा हुआ दिखता है; कभी रामचरितमानस तो कभी हरिजन या एससी-एसटी बनाम शूद्र में तो कभी पिछड़ों की पहचान में और देश को सैकड़ों साल पहले की बहस में घसीट कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ले रहा है। इसे वैचारिक दिवालियापन ही कहा जाएगा।

भारत इस वक्त 45 साल की सबसे बड़ी बेरोजगारी का शिकार है। पहले नोटबंदी और फिर कोविड महामारी ने अर्थव्यवस्था को बड़ा धक्का पहुंचाया है। बहुत बड़ी तादाद में नौकरियां चली गईं तो न जाने कितने कारोबार बंद हो गए। कोविड के कारण अकारण लोगों की मौतें हों या अर्थव्यवस्था के प्रभाव से आत्महत्याएं; इनके आंकड़े डराते हैं। सरकारी भर्ती या तो रुकी हुई है या फिर पद घट रहे हैं या निजीकरण की रफ्तार का प्रभाव है कि रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। ऐसे में लड़ाई और विमर्श तो इस बात पर होनी चाहिए कि रोजगार के अवसर कैसे बढ़े या विकेंद्रित कारोबार कैसे बढ़े, स्वरोजगार के अवसर कैसे बढ़े? ऐसी परिस्थिति में जब पूंजी का केंद्रीकरण ही बढ़ रहा हो, अंधाधुंध शहरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही हो,गांवों की अव्यवस्था और मूलभूत सुविधाओं के अभाव में शहरों की तरफ पलायन बढ़ रहा है तो बढ़ती आबादी में परिवारों में बंटवारा होने के करण खेत के छोटे-छोटे टुकड़े होते जा रहे हों,जो किसी भी दृष्टि से लाभदायक नहीं है और परिवार का बोझ उठाने में भी असमर्थ साबित हो रहे हैं। चिकित्सा और शिक्षा महंगी होती जा रही है। देश में आर्थिक विषमता सिर्फ बढ़ ही नहीं रही है बल्कि सुरसा की तरह बढ़ती जा रही है। सौ घरानों के पास देश की 90 फीसद से ज्यादा संपदा हो गई है। पड़ोसी देशों की चुनौतियां भी मुंह बाये खड़ी है। ऐसे में जिन मुद्दों का इंसानों की बेहतरी से कोई संबंध नहीं है और कम-से-कम 90 फीसद से ज्यादा लोगों का तो कोई संबंध नहीं है; उन मुद्दों से देश को भटकाना क्या देश और समाज के साथ गद्दारी नहीं है।

सबसे बड़ा सवाल तो यही पूछा जाना चाहिए कि कोरोना के वक्त धर्म और धार्मिक संगठनों ने आमजन की कितनी मदद की या जातीय संगठन तथा कथित ठेकेदारों ने लाचार लोगों को कितनी मदद की? इसी परिप्रेक्ष्य में एक सवाल पूछ लिया जाए कि इन वर्षों में धर्म का इस्तेमाल सिर्फ राजनीति और वोट के अलावा और किस रूप में हुआ है? क्या इसके ठेकेदार इस बात का दावा करते हुए आंकड़े दे सकते हैं कि इन विवादों के छिड़ने के बाद से आबादी में कितनों में राम, लक्ष्मण, भरत के गुणों का विकास हुआ या कितनों ने सचमुच में राम जैसी मर्यादा, लक्ष्मण का समर्पण, भरत का आदर्श अपनाया है? असल में तो यही प्रतीत होता है कि रावण और कैकेयी जैसों की संख्या ही बढ़ रही है? कितनों ने कृष्ण से या महाभारत से शिक्षा ली है? क्या यह आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि जितनी चर्चा धर्म की बढ़ी और धर्मस्थल कदम-कदम पर बने उतना ही धर्म और ईश्वर का डर खत्म हो गया। तभी तो चारों तरफ पाप बढ़ा हुआ है और धर्म के ठेकेदारों ने सभी पापियों के लिए पाप करने के बाद उसे धोने के रास्ते भी निकाल लिये हैं। क्या यह सच नहीं है कि सीता के वनगमन का दृश्य देखकर आंसू बहाने वाले लोग फिल्म या धारावाहिक खत्म होते ही बीबी को पीटने लगते हैं, भारत मिलाप के दृश्य पर सुबकने वाले अपने ही भाई से मुकदमा लड़ रहे होते हैं या उसके खिलाफ षड्यंत्र कर रहे होते हैं, द्रौपदी के चीरहरण पर दुखी होने वाले अपने बहुत करीबी से या आसपास चीरहरण से भी ज्यादा घृणित काम कर बैठते हैं। रोज इन समाचारों से अखबार रंगे रहते हैं।

सवाल है कि फिर सभी धार्मिक पुस्तकों और प्रतीकों ने अपने मानने वालों पर क्या प्रभाव डाला है? अगर कुछ नहीं तो उनका उपयोग क्या है? यही सवाल जातियों के ठेकेदारों से भी है कि क्यों नहीं कोई दूसरा महत्मा फुले या बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर पैदा हो पाए आजतक? और कैसे जातियों के उत्थान के नाम पर सत्ता पाए लोग अरबपति-खरबपति बन गए। ऊंच बनाम नीच की लड़ाई लड़ते-लड़ते लोग खुद ऊँचे बन जाते हैं। भारत का नौजवान क्या पिछली शताब्दी में ही अटका है या इस प्रतिस्पर्धी युग में उसका मुकाबला करने और उस चुनौती को स्वीकार कर आगे बढ़ने की मानसिकता बना चुका है जिसके परिणामस्वरूप वह जाति और धर्म से उठकर देश और दुनिया में नौकरी हो या व्यापार या अनुसंधान सभी में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा सके।

किसी भी देश और समाज के नेतृत्व की जिम्मेदारी होती है कि वो अपने यहां धार्मिक और सामाजिक कटुता दूर करे,अंधविश्वास खत्म करे और इतिहास की कटुता से अपने समाज और देश को दूर करने का जरिया बने। नई पीढ़ी को नया प्रगतिशील समाज और देश बनाने को प्रेरित करे न कि पुरानी कटुता अगली पीढ़ी को सौंपे। फिर भी जो लोग ऐसा करते हैं वो वैसे लोग हैं जिनके पास देश, समाज और मानवता के लिए कोई सार्थक सपने नहीं है, सिद्धांत नहीं है, जबकि आम भारतीय तो अपने दैनंदिनी संघर्ष से जूझ कर हल ढूंढ रहा है। इसे जाति और धर्म में उलझा कर अज्ञानी नेतृत्व मुद्दों से मुंह छुपाना चाहता है। देश और समाज को इन लोगों को आईना दिखाना ही होगा तभी ऐसे लोगों से मुक्ति मिलेगी।

---

Live हिन्दुस्तान.com

*Date:08-02-23*

# घृणा अपराध

**संपादकीय**

जिस वक्त दिल्ली के जंतर-मंतर पर दिया गया एक धर्मगुरु का आपत्तिजनक भाषण सोशल मीडिया में वायरल हो रहा है, ठीक उसी समय एक अन्य मामले में आई सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी बेहद मानीखेज है कि भारत में घृणा अपराध के लिए कोई जगह नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के दो जजों की पीठ ने उचित ही कहा है कि जब घृणा अपराधों पर कार्रवाई नहीं होती, तब माहौल खतरनाक बन जाता है। पीठ ने यह बात जुलाई 2021 में नोएडा में घटी एक घटना के पीड़ित की याचिका पर सुनवाई करते हुए कही। याचिकाकर्ता ने अदालत में गुहार लगाई थी कि उसके साथ धर्म के नाम पर बदसलूकी की गई और जब वह इसकी शिकायत दर्ज कराने पुलिस के पास गया, तो वहां से उसे बैरंग लौटा दिया गया। क्या विडंबना है, जिस मामले में त्वरित कार्रवाई से पीड़ित में प्रशासन का भरोसा, असामाजिक तत्वों में कानून का भय पैदा किया जा सकता था; पुलिस अपनी तत्परता से सुर्खरू हो सकती थी, उसके लिए एक नागरिक को आला अदालत की शरण लेनी पड़ी! ऐसे में, जंतर-मंतर का भाषण बताता है कि पुलिस-प्रशासन की लापरवाही के क्या नतीजे हो सकते हैं और आला अदालत की चिंता कितनी जायज है?

यह चिंता इसलिए भी बड़ी है कि घृणा अपराध का दायरा धर्म तक सीमित नहीं है। इसके आगे वह जाति, नस्ल, रंग, लिंग, क्षेत्र और भाषा जैसी कई तरह की भूमि तलाशता है और अराजक तत्वों को नए-नए मोर्चे मुहैया कराता है। निस्संदेह, ऐसी घटनाएं सिर्फ भारत में नहीं हो रही हैं, पाकिस्तान-बांग्लादेश से तो हम नियमित रूप से ऐसी खबरें सुनते ही रहते हैं। आखिर कितने दिन हुए, जब ऑस्ट्रेलिया में हिंदू मंदिरों को निशाना बनाया गया या स्वीडन में पवित्र ग्रंथ की प्रतियां जलाई गईं? इंग्लैंड में तो पिछले वर्ष घृणा अपराधों में 26 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। हमें अपनी चिंता करनी है। हमारा देश जितनी विविधताओं भरा व विशाल आबादी वाला है, उसमें कानून-व्यवस्था संभालने वाली एजेंसियों से अधिक संवेदनशीलता की दरकार है। दुर्योग से इस कसौटी पर वे खरी नहीं उतरतीं।

भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को जो शक्ति दी है, उसका यह अनुपम उदाहरण है कि एक नागरिक अपने मान-सम्मान व धार्मिक आजादी के संरक्षण के लिए देश की सर्वोच्च अदालत तक पहुंच जाता है और अदालत उसके सांविधानिक अधिकारों की रक्षा करते हुए राज्य को उसके दायित्व का स्मरण कराती है। मगर सवाल यह भी है कि आखिर कितने पीड़ित कानूनी जंग लड़ने की हैसियत रखते हैं? जिस तरह से घृणा अपराधों की प्रवृत्ति बढ़ रही है, और लोग आलोचना व अपराध का फर्क भूलते जा रहे हैं, उससे हमारे सामाजिक ताने-बाने को गंभीर चोट पहुंच सकती है। अभिव्यक्ति की आजादी आचरण में जिम्मेदारी की मांग करती है, मगर सोशल मीडिया के इस युग में जवाबदेही की कमी सबसे अधिक दिख रही है। ऐसे में, घृणा अपराधों के प्रति किसी किस्म की कोताही या पक्षधरता अराजक स्थिति की ओर ही ले जाएगी। सर्वोच्च अदालत ने सही कहा है कि राज्य प्रशासन पहले ऐसे कृत्यों को समस्या मानेंगे, तभी तो इसका समाधान ढूंढ़ पाएंगे। तमाम राजनीतिक पार्टियों को भी ऐसे तत्वों को हतोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि घृणा अपराध जब राजनीतिक समर्थन व जनाधार जुटा लेते हैं, तो कितने खतरनाक हो जाते हैं, हमारे कई पड़ोसी मुल्कों की हालत यह साफ-साफ बता रही है